शान्ति और समन्वय का पथ :

न य वा द

[मुनिश्री नथमलजी]

प्रकाशक :

आदर्श साहित्य संघ

प्रकाशक
आदर्श साहित्य सघ
सरदारशहर (राजस्थान)

प्रथमावृत्ति २५ •
कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा
सम्वत् २०१२
मूल्य ≈)

मुद्रक
धन्नालाल बरडिया
रेफिल आर्ट प्रेस
(आदर्श साहित्य सघ द्वारा सचालित)
३१ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता—७

स्याद्वादाय नमस्तस्मै, य विना सकला क्रिया ।
लोकद्वितयभाविन्यो नैव साङ्गत्यमासते ॥

जिसकी शरण लिये बिना लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार की क्रियाएँ सपञ्जस (सघन) नहीं होतीं उस स्याद्वाद को नमस्कार है।

जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स ॥

जिसके बिना लोक-व्यवहार भी सगत नहीं होता, उस जगद्गुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार है।

उत्पन्नं दधिभावेन, नष्टं दुग्धतया पय ।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन्, स्याद्वादद्विड् जनोऽपि क ॥

दही बनता है, दूध मिटता है गोरस स्थिर रहता है। उत्पाद और विनाश के पौर्वापर्य में भी जो अपूर्वापर है, परिवर्तन में भी जो अपरिवर्तित है, इसे कौन अस्वीकार करेगा।

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण ।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी ॥

एक प्रधान होता है, दूसरा गौण हो जाता है—यह जैन-दर्शन का नय है।

इस सापेक्ष नीति से सत्य उपलब्ध होता है। नवनीत तब मिलता है जब एक हाथ आगे बढ़ता है और दूसरा हाथ पीछे सरक जाता है।

— • —

प्रकाशकीय

जीवन के सूक्ष्मतम और मार्मिक विश्लेषण में भारतीय तत्त्व ज्ञान जिस गहराई तक पहुँचा, विश्व-दर्शन के इतिहास में उसका अनुपम स्थान है।

भारतीय तत्त्व-ज्ञान के विशद् विकास में जैन मनीषियों और तत्त्व द्रष्टाओं ने जो अमर देन दी, वस्तु-तत्त्व के बहुमुखी विवेचन का जो सापेक्ष दृष्टिकोण उन्होंने दिया, यदि लोग उसे समझें, हृदयगम करें तो आज के समस्या संकुल और अशान्तिपूर्ण लोक जीवन में समता समन्वय और शान्ति की सुरसरी प्रवाहित हो सकती है।

जैन-दर्शन का नयवाद दार्शनिक चिन्तन की एक अनूठी प्रक्रिया है, जो विभिन्न नयों से वस्तु के निरूपण का पथ बताता हुआ भेद में अभेद और विषमता में समता के समन्वय की दृष्टि देता है।

प्रस्तुत पुस्तिका 'शान्ति और समन्वय का मार्ग—नयवाद' आचार्यश्री तुलसी के विद्वान अन्तेवासी मुनिश्री नथमलजी के गम्भीर चिन्तन का प्रतिरूप है, जिसमें उन्होंने नयवाद के दार्शनिक पहलुओं के साथ आज की राजनैतिक गुत्थियों का तुलनात्मक विवेचन देते हुये शान्ति और समन्वय का एक व्यावहारिक हल प्रस्तुत किया है।

'आदर्श साहित्य संघ' की ओर से इस महत्त्वपूर्ण तात्विक पुस्तिका का प्रकाशन करते हुये हम हार्दिक प्रसन्नता अनुभव करते हैं। आशा है, पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

—जयचन्दलाल दफ्तरी (व्यवस्थापक)

विषयानुक्रम

वस्तु सत्य

यह विश्व समस्याओं का समवाय है। उनका मूल समष्टि है।

रस्सी का एक ही सिरा होता तो गांठ नहीं होती। मनुष्य अकेला ही होता तो द्वन्द्व नहीं होता। सिर पर एक ही बाल होता तो जटिलता नहीं होती। एक ही मस्तिष्क होता तो संघर्ष नहीं होते।

ये अलगाव, लड़ाइयां, उलझनें और चिनगारियां बहुता के परिणाम हैं।

यह विश्वाकाश बहुता और एकता के चांद-सूरज से युक्त हुआ है।

यह हमारा सूर्य बहुता की अनभिव्यक्ति में एकता की स्पष्ट व्यञ्जना है।

अमावस की रात एकता की अनभिव्यक्ति में बहुता की स्पष्ट व्यञ्जना है।

पूर्णिमा की रात व्यष्टि और समष्टि का सुन्दर समन्वय है।

व्यष्टि और समष्टि का संगम मिटनेवाला नहीं है। व्यष्टि भी सत्य है, समष्टि भी सत्य है। सत्य को मिटाया नहीं जा सकता।

भगवान् महावीर ने कहा—जो है उसे मिटाने की मत सोचो। तुम्हारा अस्तित्व तुम्हें प्यारा है उनका अस्तित्व उन्हें प्यारा है। जो नहीं है, उसे बनाने की

डोरी को इस प्रकार खींचो कि गांठ न पड़े। मनुष्य को इस प्रकार चलाओ कि लड़ाई न हो। बालों को इस प्रकार सँवारो कि उलझन न बने। विचारों को इस प्रकार ढालो कि भिड़न्त न हो। तात्पर्य की भाषा में—आक्षेप और आक्रमण की नीति मत बरतो। उससे गांठ घुलती है, युद्ध छिड़ते हैं, बाल उलझते हैं और चिनगारियाँ उछलती हैं।

भगवान् ने कहा—आक्षेप नीति के पीछे यथार्थ दृष्टिकोण और तटस्थ भाव नहीं होता इसलिए वह आग्रह, दुर्नय और एकान्त की नीति है। आक्षेप को छोड़ो, सत्य उभर आएगा।

भगवान् ने कहा—एक ओर यह अखण्ड विश्व की अविभक्त सत्ता है और दूसरी ओर यह खण्ड का चरम रूप व्यक्ति है।

व्यक्ति का आक्षेप करनेवाली सत्ता और सत्ता का आक्षेप करनेवाला व्यक्ति—दोनों भटके हुए हैं। सत्ता का रूप व्यक्ति है। व्यक्ति की विशाल शृंखला सत्ता है। सापेक्षता में दोनों का रूप निखर उठता है।

यह व्यक्ति और समष्टि की सापेक्ष नीति जैन दर्शन का नय है। इसके अनुसार समष्टि सापेक्ष व्यक्ति और व्यक्ति सापेक्ष समष्टि—दोनों सत्य हैं। समष्टि निरपेक्ष व्यक्ति और व्यक्ति निरपेक्ष समष्टि—दोनों मिथ्या हैं।

— १० —

व्यवहार-सत्य

नय वाद प्रव सत्य की अपरिहार्य व्याख्या है। वह जितना दार्शनिक सत्य है उतना ही व्यवहार सत्य है। हमारा जीवन वैयक्तिक भी है और सामुदायिक भी। इन दोनों कक्षाओं में नय की अर्हता है।

सापेक्ष नीति से व्यवहार में सामंजस्य आता है। उसका परिणाम है मैत्री, शान्ति और व्यवस्था। निरपेक्ष नीति अवहेलना, तिरस्कार और घृणा पैदा करती है। परिवार, जाति, गाँव, राज्य राष्ट्र और विश्व—ये क्रमिक विकासशील संगठन हैं। संगठन का अर्थ है सापेक्षता। सापेक्षता का नियम जो दो के लिए है, वही अन्तर्राष्ट्रीय जगत् के लिए है।

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की अवहेलना कर अपना प्रभुत्व स्थापता है, वहाँ असमंजसता खड़ी हो जाती है। उसका परिणाम है—कटुता संघर्ष और अशान्ति।

निरपेक्षता के पाँच रूप बनते हैं—

१—वैयक्तिक, २—सामाजिक,

डोरी को इस प्रकार खींचो कि गाँठ न पड़े। मनुष्य को इस प्रकार चलाओ कि लड़ाई न हो। बालों को इस प्रकार सँवारो कि उलझन न बने। विचारों को इस प्रकार ढालो कि भिड़न्त न हो। तात्पर्य की भाषा में—आक्षेप और आक्रमण की नीति मत बरतो। इससे गाँठ घुलती है, युद्ध छिड़ते हैं, बाल उलझते हैं और चिनगारियाँ उछलती हैं।

भगवान् ने कहा—आक्षेप नीति के पीछे यथार्थ दृष्टिकोण और तटस्थ भाव नहीं होता इसलिए यह आग्रह, दुर्नय और एकान्त की नीति है। आक्षेप को छोड़ो सत्य उतर आएगा।

भगवान् ने कहा—एक ओर यह अखण्ड विश्व की अविभक्त-सत्ता है और दूसरी ओर यह खण्ड का चरम रूप व्यक्ति है।

व्यक्ति का आक्षेप करनेवाली सत्ता और सत्ता का आक्षेप करनेवाला व्यक्ति—दोनों भ्रान्त हुए हैं। सत्ता का रूप व्यक्ति है। व्यक्ति की विशाल शृंखला सत्ता है। सापेक्षता में दोनों का रूप निखर उठता है।

यह व्यक्ति और समष्टि की सापेक्ष नीति अनेकान्त का नय है। इसके अनुसार समष्टि-सापेक्ष व्यक्ति और व्यक्ति सापेक्ष समष्टि—दोनों सत्य हैं। समष्टि निरपेक्ष व्यक्ति और व्यक्ति निरपेक्ष समष्टि—दोनों मिथ्या हैं।

— १० —

व्यवहार-सत्य

नय-वाद ध्रुव सत्य की अपरिहार्य व्याख्या है। यह जितना दार्शनिक सत्य है उतना ही व्यवहार-सत्य है। हमारा जीवन वैयक्तिक भी है और सामुदायिक भी। इन दोनों कक्षाओं में नय की अर्हता है।

सापेक्ष नीति से व्यवहार में सामञ्जस्य आता है। उसका परिणाम है मैत्री शान्ति और व्यवस्था। निरपेक्ष नीति अवहेलना, तिरस्कार और घृणा पैदा करती है। परिवार, जाति, गाँव, राज्य, राष्ट्र और विश्व—ये क्रमिक विकासशील संगठन हैं। संगठन का अर्थ है सापेक्षता। सापेक्षता का नियम जो दो के लिए है, वही अन्तर्राष्ट्रीय जगत् के लिए है।

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की अवहेलना कर अपना प्रभुत्व साधना है वहाँ असमञ्जसता खड़ी हो जाती है। उसका परिणाम है—कटुता संघर्ष और अशान्ति।

निरपेक्षता के पाँच रूप बनते हैं :—

१—वैयक्तिक, २—जातीय, ३—सामाजिक, ४—राष्ट्रीय ५—अन्तर्-राष्ट्रीय।

इनके परिणाम हैं—वर्ग भेद, अलगाव, अव्यवस्था, संघर्ष, शक्ति क्षय, युद्ध और अशान्ति।

सापेक्षता के रूप भी पाँच हैं —

१—वैयक्तिक २—ग्रामीण ३—सामाजिक ४—राष्ट्रीय ५—अन्तर् राष्ट्रीय।

इनके परिणाम हैं—समता प्रधान जीवन, सामीप्य, व्यवस्था, स्नेह, शक्ति संवर्धन, मैत्री और शान्ति।

—○○—

व्यक्ति और समुदाय

व्यक्ति अकेला ही नहीं आता। वह बन्धन के बीज साथ लिए आता है। अपने हाथों उन्हें सींच विशाल वृक्ष बना लेता है। वही निकुञ्ज उसके लिए बन्धन गृह बन जाता है। बन्धन लादे जाते हैं, यह दिखाऊ सत्य है। टिकाऊ सत्य यह है कि बन्धन स्वयं विकसित किए जाते हैं।

उन्हीं के द्वारा वैयक्तिकता समुदाय से जुड़कर सीमित हो जाती है। वैयक्तिकता और सामुदायिकता के बीच भेद रेखा खींचना सरल कार्य नहीं है। व्यक्ति व्यक्ति ही है। सब स्थितियों में वह व्यक्ति ही रहता है। जन्म मौत और अनुभूति का क्षेत्र व्यक्ति की वैयक्तिकता है। सामुदायिकता की व्याख्या पारस्परिकता के द्वारा ही की जा सकती है। दो या अनेक की जो पारस्परिकता है वही समुदाय है।

पारस्परिकता की सीमा से इधर जो कुछ भी है, वह वैयक्तिकता है। व्यक्ति का आन्तरिक क्षेत्र वैयक्तिक है, वह उससे जितना बाहर जाता है उतना ही सामुदायिक बनता चलता है।

व्यक्ति को समाज निरपेक्ष और समाज को व्यक्ति निरपेक्ष

एकान्त पार्थक्यवादी नीति है। इससे दोनों की स्थिति असमंजस बनती है।

समन्वयवादी नीति के अनुसार व्यक्ति और समाज की स्थिति सापेक्ष है। कहीं व्यक्ति गौण बनता है समाज मुख्य और कहीं समाज गौण बनता है और व्यक्ति मुख्य।

इस स्थिति में स्नेह का प्रादुर्भाव होता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने इसे मथनी के रूपक में चित्रित किया है। मन्थन के समय एक हाथ आगे आता है दूसरा पीछे चला जाता है। दूसरा आगे आता है, पहला पीछे सरक जाता है। इस सापेक्ष मुख्यामुख्य भाव से स्नेह मिलता है। एकान्त आग्रह से खिंचाव बढ़ता है।

— ० ० —

अन्तर्राष्ट्रीय-निरपेक्षता

बहुता और अल्पता व्यक्ति और समूह के एकान्तिक आग्रह पर असन्तुलन बढ़ता है सामञ्जस्य की कड़ी टूट जाती है।

अधिकतम मनुष्योंका अधिकतम हित—यह जो सामाजिक उपयोगिता का सिद्धान्त है वह निरपेक्ष नीति पर आधारित है। इसी के आधार पर हिटलर ने यहूदियों पर मनमाना अत्याचार किया।

(बहु) संख्यकों के लिए (अल्प) संख्यकों तथा बड़ों के लिए छोटों के हितों का बलिदान करने के सिद्धान्त का औचित्य एकान्तवाद की देन है।

सामन्तवादी युग में बड़ों के लिए छोटों के हितों का त्याग उचित माना जाता था। बहुसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यकों तथा बड़े राष्ट्रों के लिए छोटे राष्ट्रों की उपेक्षा आज भी होती है। यह अशान्ति का हेतु बनता है। सापेक्ष नीति के अनुसार किसी के लिए भी किसी का अनिष्ट नहीं किया जा सकता।

बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों को नगण्य मान उन्हें आगे आने का अवसर नहीं देते। इस निरपेक्ष-नीति की प्रतिक्रिया होती है। फलस्वरूप छोटे राष्ट्रों में बड़ों के प्रति असनेह भाव उत्पन्न हो जाता है। वे संगठित हो

उन्हें गिराने की सोचते हैं। घृणा के प्रति घृणा और तिरस्कार के प्रति तिरस्कार तीव्र हो उठता है।

अविकसित एशिया के प्रति विकसित राष्ट्रों की जो निरपेक्ष नीति रही, उसकी प्रतिक्रिया फूट रही है। एशियाई राष्ट्रों में पश्चिमी राष्ट्रों के प्रति जो दुराव है, वह उसीका परिणाम है। परिवर्तन के सिद्धान्त में विश्वास रखनेवाले राष्ट्र सम्हल गए। उन्होंने अपने लिए उन्न सद्भावना का वातावरण बना लिया।

ब्रिटेन ने शासनहीन भारत, बर्मा और लंका का समय की मांग के साथ साथ स्वतन्त्र कर निरपेक्ष (नास्ति सर्वथावादी) नीति को छोड़ा तो उसकी सापेक्ष नीति सफल रही।

फ्रांस ने भी भारत के कुछ प्रदेश और हालैण्ड ने जावा, सुमात्रा आदि को छोड़ा वह भी इसी कोटि का कार्य है। पुर्तगाल अब भी निरपेक्ष (अस्ति सर्वथा-वादी) नीति को लिए बैठा है और गोआ के प्रश्न पर अड़ा बैठा है। समय-मर्यादा के अनुसार निरपेक्ष नीति का निर्वाह हो सकता है किन्तु उसके भावी परिणामों से नहीं बचा जा सकता।

मैत्री की पृष्ठभूमि सत्य है वह ध्रुवता और परिवर्तन दोनों के साथ जुड़ा हुआ है। अपरिवर्तन जितना सत्य है उतना ही सत्य है परिवर्तन। अपरिवर्तन को नहीं जानता वह चक्षुष्मान् नहीं है वैसे ही वह भी अचक्षुष्मान् है जो परिवर्तन को नहीं समझता।

वस्तुएं बदलती हैं क्षेत्र बदलता है काल बदलता है, विचार बदलते हैं इनके साथ स्थितियां बदलती हैं। बदलते सत्य को जो पकड़ लेता है वह सामञ्जस्य की तुला में चढ़ दूसरों का साथी बन जाता है।

समय-समय पर हुई राज्यक्रान्तियों ने राज्यसत्ताओं को बदल डाला। राज्य की सीमाएं बदलती रही हैं। शासन-काल बदलता रहा है। शासन की पद्धतियाँ भी बदलती रही हैं। इन परिवर्तनों का मूल्यांकन करनेवाले ही अशान्ति को टाल सकते हैं। गांधी, नेहरू और पटेल अखण्ड भारत के सिद्धान्त पर अड़े ही रहते जिन्ना की मांग को स्वीकार नहीं करते तो सम्भवतः अशान्ति उग्र रूप लेती। किन्तु उनकी सापेक्ष नीति ने वस्तु, क्षेत्र, काल और परिस्थिति के मूल्यांकन द्वारा अशान्ति को निर्वीर्य बना दिया।

— ० —

ऐकान्तिक आग्रह

भारत में राज्य पुनर् रचना को लेकर अभी अभी जो असन्तुलन आया वह केवल आग्रही मनोवृत्ति का निदर्शन है। भारत की अखण्डता में निष्ठा रखनेवाले कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक झण्डे की सत्ता स्वीकार करनेवाले प्रान्त-रचना जैसे छोटे प्रश्न पर उलझ गए। हिंसा को उभारने लग गए।

भारत सबल व संघात्मक राज्य है। संविधान की तीसरी धारा के द्वारा पार्लियामेंट को यह अधिकार प्राप्त है कि वह विधि द्वारा राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी राज्य का क्षेत्र घटा बढ़ा सकेगी, नया राज्य बना सकेगी।

इस व्यवस्था के विरुद्ध जो आन्दोलन चला, वह परिवर्तन की मर्यादा को न समझने का परिणाम है। भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्-निर्माण में जो तथ्य है, सत्य केवल वही नहीं है।

भाषा की विविधता में जो सांस्कृतिक एकात्मकता है वह भी तो एक तथ्य है।

भेदात्मक प्रवृत्तियों के एकान्तिक आग्रह से अखण्डता का नाश होता है।

अभेदात्मक वृत्ति के एकान्त आग्रह से खण्ड की वास्तविकता और उपयोगिता का लोप होता है।

राज्यों की आन्तरिक स्वतन्त्रता के कारण उन्हें अपनी पृथक् विशेषताओं को विकसित करने का अवसर मिलता है। संघ सबद्ध होने के कारण उन्हें एक साथ मिलकर विकास करने का अवसर भी मिलता है।

इस समन्वयवादी नीति में पृथकता में पलने वाले स्वातन्त्र्य बीज का विनाश भी नहीं होता और सामुदायिक शक्ति और सुरक्षा के विकास का लाभ भी मिल जाता है।

स्विस लोगों में जर्मन, फ्रेंच और इटालियन—ये तीन भाषाएं चलती हैं। इस विभिन्नता के उपरान्त भी वे एक कड़ी से जुड़े हुए हैं।

संघ या संघात्मक राज्य में जो विभिन्नता और समता के समन्वय का अवसर मिलता है, वह प्रत्येक राज्य की पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता में नहीं मिल सकता।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि व्यष्टि और समष्टि तथा अपरिवर्तन और परिवर्तन के समन्वय से व्यवहार का सामञ्जस्य और व्यवस्था का सन्तुलन होता है—वह इनके असमन्वय में नहीं होता।

— o o —

समन्वय की दिशा में प्रगति

समन्वय का सिद्धान्त जैसे विश्व-व्यवस्था से सम्बद्ध है, वैसे ही व्यवहार व उपयोगिता से भी सम्बद्ध है। विश्व व्यवस्था में जो सहज सामञ्जस्य है उसका हेतु उसी में निहित है। वह है—प्रत्येक पदार्थ में भिन्नता और समता का सहज समन्वय। यही कारण है कि सभी पदार्थ अपनी स्थिति में क्रियाशील रहते हैं। उपयोगिता के क्षेत्र में सहज समन्वय नहीं है इसलिए वहां सहज सामञ्जस्य भी नहीं है। असामञ्जस्य का कारण एकान्त बुद्धि और एकान्त बुद्धि का कारण पक्षपातपूर्ण बुद्धि है।

[illegible] और पर का भेद तीव्र होता है तटस्थ वृत्ति क्षीण हो जाती है हिंसा का मूल यही है।

अहिंसा की जड़ है मध्यस्थ वृत्ति—लाभ और अलाभ में वृत्तियों का सन्तुलन।

स्व के उत्कर्ष में पर की हीनता का प्रतिबिम्ब होता है। पर के उत्कर्ष में [illegible] की हीनता की अनुभूति होती है। ये दोनों ही एकान्तवाद हैं।

एक जाति या राष्ट्र दूसरी जाति या राष्ट्र पर हावी हुआ या होता है यह इसी एकान्तवाद की प्रतिच्छाया है।

पर के जागरण-काल में [illegible] के [illegible] सकना। यहाँ दोनों मध्य रेखा पर आ [illegible] हैं। [illegible] बन जाता है।

आज की राजनीति सापेक्षता की दिशा में [illegible] चाहिए—विश्व का मानस अनेकान्त का [illegible] उभार रहा है।

[illegible] के प्रश्न पर शान्ति, सद्भावना [illegible] से विचार करने की जो सूझ है वह [illegible] स्पष्ट संकेत है। यही घटना यदि [illegible] परिणाम भयंकर हुआ होता किन्तु [illegible] है

इस [illegible] का मानस समन्वय की रेखा [illegible] है।

भगवान् महावीर का दार्शनिक [illegible] विकसित हो रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पंचशील की [illegible] और पाँच सिद्धान्तों का समावेश [illegible] समन्वय के प्रगति चिह्न हैं।

की

उनमें

हैं।

पंच शील

१—एक दूसरे की प्रादेशिक या भौगोलिक अखण्डता एवं सार्वभौमिकता का सम्मान।

२—अनाक्रमण।

३—अन्य देशों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना।

४—समानता एवं परस्पर लाभ।

५—शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व।

दश सिद्धान्त

बांडुग सम्मेलन द्वारा स्वीकृत दश सिद्धान्त ये हैं —

१ मूल मानव अधिकारों और संयुक्त राष्ट्र उद्देश्य-पत्र के उद्देश्यों के प्रयोजनों और सिद्धान्तों के प्रति आदर।

२ सभी राष्ट्रों की प्रभु सत्ता और प्रादेशिक अखण्डता के लिए सम्मान।

३ छोटे बड़े सभी राष्ट्र और जातियों की समानता का मान्यता।

४ अन्य देशों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना।

५ संयुक्त-राष्ट्र उद्देश्य पत्र के अनुसार अकेले अथवा सामूहिक रूप से आत्म-रक्षा के प्रत्येक राष्ट्र के अधिकार के प्रति आदर।

६ किसी भी बड़ी शक्ति के स्वार्थ की पूर्ति के लिए सामूहिक सुरक्षा के आयोजनों के उपयोग से अलग रहना एक देश का दूसरे देश पर दबाव न डालना।

७ ऐसे कार्यों—आक्रमण अथवा बल प्रयोग की धमकियों से अलग रहना जो किसी देश की प्रादेशिक अखण्डता अथवा राजनीतिक स्वाधीनता के विरुद्ध हों।

८ सभी आन्तरिक झगड़ों का शान्तिपूर्ण उपायों से निपटारा करना।

९ पारस्परिक हित एवं उपयोग को प्रोत्साहन देना।

१० न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों के लिए सम्मान।

१३ जून ५५ को नेहरू, बुल्गानिन के संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर हुए। उनमें पंचशील का तीसरा सिद्धान्त अधिक व्यापक रूप में मान्य हुआ है—किसी भी राजनीतिक आर्थिक अथवा सैद्धान्तिक कारण से एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न करना।

इस राजनीतिक नयवाद की दार्शनिक नयवाद और सापेक्षवाद से तुलना कीजिये।

१ कोई भी वस्तु और वस्तु व्यवस्था स्याद्वाद या सापेक्षवाद की मर्यादा से बाहर नहीं है[1]।

२ दो विरोधी गुण एक वस्तु में एक साथ रह सकते हैं। उनमें सहानवस्थान (एक साथ न टिक सके) जैसा विरोध नहीं है[2]।

---

१ आदीपमाव्योमसमस्वभाव स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।
(स्याद्वाद मञ्जरी ५)

२ अस्तित्व नास्ति वन सह न विरुध्यते। (स्याद्वाद मञ्जरी २४)

३ जितने वचन-प्रकार हैं उतने ही नय हैं[1]।

४ ये विशाल ज्ञानसागर के अंश हैं[2]।

५ ये अपनी अपनी सीमा में सत्य हैं[3]।

६ दूसरे पक्ष से सापेक्ष हैं तभी नय हैं।

७ दूसरे पक्ष की सत्ता में हस्तक्षेप, अवहेलना व आक्रमण करते हैं तब वे दुर्नय बन जाते हैं।

८ सब नय परस्पर में विरोधी हैं—पूर्ण साम्य नहीं है किन्तु सापेक्ष हैं एक ही कड़ी से जुड़े हुए हैं इसलिए वे अविरोधी सत्य के साधक हैं[6]। (क्या संयुक्त-राष्ट्र संघ के निर्माण का यह आधारभूत सत्य नहीं है जहां विरोधी राष्ट्र भी एकत्रित होकर विरोध का परिहार करने का यत्न करते हैं।)

---

१ जावइया वयणवहा तावइया चेव होंति णयवाया।
(सन्मति प्रकरण ३।४७)

२ णियवयणिज्जसच्चा सव्वनया परवियालणे मोहा।
(सन्मति प्रकरण १।२८)

३ नायं वस्तु न चावस्तु वस्त्वंशः कथ्यते बुधैः।
नासमुद्रः समुद्रो वा समुद्रांशो यथैव हि॥
(स्याद्वादरत्नाकरावतारिका ७।१)

४ विपक्षापेक्षाणां कथयसि नयानां सुनयताम्।
(स्याद्वादरत्नाकरावतारिका ७।१)

५ विपक्षक्षेप्तॄणां पुनरिह विभो! दुर्नयनताम्।
(स्याद्वादरत्नाकरावतारिका ७।१)

६ सर्वे नया अपि विरोधभृतो मिथस्ते सम्भूय साधु समयं भगवन्! भजन्ते—(नय कर्णिका २२)

९ एकान्त अविरोध और एकान्त विरोध से पदार्थ-व्यवस्था नहीं होती। व्यवस्था की व्याख्या अविरोध और विरोध की सापेक्षता द्वारा की जा सकती है[1]।

१० जितने एकान्तवाद या निरपेक्षवाद हैं वे सब दोषोंसे भरे पड़े हैं।

११ ये परस्पर घाती हैं—एक दूसरे का विनाश करनेवाले हैं[2]।

१२ स्याद्वाद और नयवाद में अनाक्रमण सहअस्तित्व स्वमर्यादा का अनतिक्रमण, सापेक्षता—ये सामञ्जस्यकारक सिद्धान्त हैं।

इनका व्यावहारिक उपयोग भी असन्तुलन को मिटानेवाला है।

—○○—

---

१ एकान्तानित्ये एकान्तनित्ये च वस्तुनि व्यवहारो—व्यवस्था न घटते (सूत्रकृताङ्ग वृत्ति २५३)

२ य एव दोषाः किल नित्यवादे, विनाशवादेऽपि समास्त एव।
परस्परध्वंसिषु कण्टकेषु जयत्यधृष्यं जिन! शासनं ते॥
(स्याद्वाद मञ्जरी २६)

साम्प्रदायिक सापेक्षता

धार्मिक क्षेत्र भी सम्प्रदायों की विभिन्नता के कारण असामञ्जस्य की रंगभूमि बना हुआ है।

समन्वय का पहला प्रयोग यहीं होना चाहिए। समन्वय का आधार ही अहिंसा है। अहिंसा ही धर्म है। धर्म का घातक कीटाणु है—साम्प्रदायिक आवेश।

आचार्यश्री तुलसी द्वारा सन् १९५४ में बम्बई में प्रस्तुत साम्प्रदायिक भावना के पांच सूत्र उस अभिनिवेश के नियन्त्रण का सरल आधार प्रस्तुत करते हैं। वे इस प्रकार हैं —

१ मण्डनात्मक नीति बरती जाय। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाय। दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किये जाय।

२ दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाय।

३ दूसरे सम्प्रदाय और उसके अनुयायियों के प्रति घृणा व तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाय।

४ कोई सम्प्रदाय परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि अवांछनीय व्यवहार न किया जाय।

५ धर्म के मौलिक तथ्य—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवनव्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाय।

सामञ्जस्य का आधार मध्यम मार्ग ही हो सकता है।

भेद और अभेद—ये हमारी स्वतन्त्र चेतना, स्वतन्त्र व्यक्तित्व और स्वतन्त्र सत्ता के प्रतीक हैं। ये विरोध और अविरोध के साधन नहीं हैं। अविरोध का आधार यदि अभेद होगा तो भेद विरोध का आधार अवश्य बनेगा।

अभेद और भेद—ये वस्तु या व्यक्ति के नैसर्गिक गुण हैं। इनकी सह स्थिति ही व्यक्ति या वस्तु है। इसलिए द्वन्द्व अविरोध या विरोध का साधन नहीं बनना चाहिए। भेद भी अविरोध का साधन बने—यही समन्वय से प्रतिफलित साधना का स्वरूप है। यही है अहिंसा, मध्यस्थ वृत्ति, तटस्थ नीति या साम्य योग।

जाति, रंग और वर्ग के भेदों को लेकर जो संघर्ष चल रहे हैं उनका आधार विषम मनोवृत्ति है। उसके बीज की उर्वर भूमि एकान्तवाद है। निरंकुश एकाधिपत्य और अराजकता—ये दोनों ही एकान्तवाद हैं। वाणी विचार लेख और मान्यता का नियन्त्रण स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अपहरण है।

अराजकता में समूचा जीवन ही खतरे में पड़ जाता है। सामञ्जस्य की रेखा इनके बीच में है।

व्यक्ति अकेलेपन और समुदाय के मध्य-बिन्दु पर जीता है। इसलिए उसके सामञ्जस्य का आधार मध्यम मार्ग ही हो सकता है।

शान्ति और समन्वय

प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय यथार्थ मूल्यों के द्वारा ही शान्ति का अनुभव व उपभोग कर सकता है। इसलिए दृष्टिकोण को वस्तुस्पर्शी बनाना उनके लिए वरदान जैसा होता है।

पूर्व मान्यता या रूढ़ि के कारण कुछ व्यक्ति या राष्ट्र स्थिति का यथार्थ मूल्य नहीं आँकते या आँकना नहीं चाहते—वे अतीतदर्शी हैं।

अतीत दर्शन के आधार पर वर्तमान (ऋजु-सूत्र-नय) की अवहेलना करना निरपेक्ष नीति है। इसका परिणाम है असामञ्जस्य। इसके निदर्शन च्यांगवादी चीन और उसे मान्यता न देनेवाले राष्ट्र बन सकते हैं। वस्तु का मूल्यांकन करते समय हमारा दृष्टिकोण एवम्भूत होना चाहिए। जो वर्ग वर्तमान में चीन के भू-भाग का शासक नहीं है वह उसका सर्व सत्ता-सम्पन्न प्रभु कैसे होगा? च्यांग का राष्ट्रवादी चीन और माओ का जनवादी चीन एक नहीं हैं। अवस्था भेद से नाम भेद जो होता है, वह मूल्यांकन की महत्वपूर्ण दिशा (समभिरूढ़ नय) है।

डलेस ने गोआ को पुर्तगाल का उपनिवेश कहा और खलबली मच गई।

इस अधिकार जागरण के युग में उपनिवेश का स्वर एवम्भूत दृष्टिकोण का परिचायक नहीं है।

अमरीकी मजदूर नेता श्री वाल्टर रूथर के शब्दों में 'एशिया में अमरीका की विदेश नीति शक्ति और सैनिक गठ बन्धनों पर आधारित है अवास्तविक है। अमेरिका ने एशिया की सद्भावना को बुरी तरह से खोदिया है।

गोआ के बारे में अमरीकी परराष्ट्र मन्त्री श्री डलेस ने जो कुछ कहा, उससे स्पष्ट है कि वे एशियाई भावना को नहीं समझते[१]।'

यह असंदिग्ध सत्य है—शक्ति प्रयोग निरपेक्षता की मनोवृत्ति का परिणाम है। निरपेक्षता से सद्भावना का अन्त और कटुता का विकास होता है। कटुता की परिसमाप्ति अहिंसा में निहित है। क्रूरता का भाव तीव्र होता है, समन्वय की बात नहीं सूझती। समन्वय और अहिंसा अन्योन्याश्रित है। शान्ति से समन्वय और समन्वय से शान्ति होती है।

—oo—

१—हिन्दुस्तान, अक्टूबर ७, १९५६

सह-अस्तित्व की धारा

प्रभु सत्ता की दृष्टि से सब स्वतन्त्र राष्ट्र समान हैं किन्तु सामर्थ्य की दृष्टि से सब समान नहीं भी हैं। अमरिका शस्त्र-बल और धन बल दोनों से समृद्ध है। रूस सैन्य बल और धन बल से समृद्ध है। चीन और भारत जन बल से समृद्ध हैं। ब्रिटेन व्यापार विस्तार की कला से समृद्ध है। कुछ राष्ट्र प्राकृतिक साधनों से समृद्ध हैं। समृद्धि का कोई न कोई भाग सभी को मिला है। सामर्थ्य की विभिन्न कक्षाएँ बँटी हुई हैं। सब पर किसी एक की प्रभु सत्ता नहीं है। एक दूसरे में पूर्ण साम्य और वैषम्य भी नहीं है। कुछ साम्य और कुछ वैषम्य से वंचित भी कोई नहीं है। इसलिए कोई किसी को मिटा भी नहीं सकता और मिट भी नहीं सकता। वैषम्य को ही प्रधान मान जो दूसरे को मिटाने की सोचता है वह वैषम्य-वादी नीति के एकान्तीकरण द्वारा असामञ्जस्य की स्थिति पैदा कर डालता है।

साम्य को ही एकमात्र प्रधान मानना भी साम्यवादी नीति का ऐकान्तिक आग्रह है। दोनों के ऐकान्तिक आग्रह के परिणाम स्वरूप ही आज शीत-युद्ध का बोलबाला है।

वैषम्य और साम्य दोनों विरोधी अवश्य हैं पर निरपेक्ष नहीं हैं। दोनों सापेक्ष हैं और दोनों एक साथ टिक सकते हैं।

विरोधी युगलों के सह-अस्तित्व का प्रतिपादन करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—नित्य-अनित्य, सामान्य-असामान्य, वाच्य-अवाच्य सत्-असत् जैसे विरोधी युगल एक साथ ही रहते हैं। जिस पदार्थ में कुछ गुणों की आस्तिता है उसमें कुछ की नास्तिता भी है। यह आस्तिता और नास्तिता एक ही पदार्थ के दो विरोधी किन्तु सह अवस्थित धर्म हैं।

सहावस्थान विश्व की विराट् व्यवस्था का अंग है। यह जैसे पदार्थाश्रित है, वैसे ही व्यवहाराश्रित है। इसी की प्रतिध्वनि भारतीय प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू के पंचशील में है। साम्यवादी और जनतन्त्री राष्ट्र एक साथ जी सकते हैं—राजनीति के रंगमंच पर यह घोष बलशाली बन रहा है। यह समन्वय के दर्शन का जीवन-व्यवहार में पड़नेवाला प्रतिबिम्ब है।

वैयक्तिकता, जातीयता, सामाजिकता, प्रान्तीयता और राष्ट्रीयता—ये निरपेक्ष रूप में बढ़ते हैं तब असामञ्जस्य को लिए ही बढ़ते हैं।

व्यक्ति और सत्ता दोनों भिन्न ही हैं, यह दोनों के सम्बन्ध की अवहेलना है।

व्यक्ति ही तत्त्व है—यह राज्य की प्रभुसत्ता का निराकार है। राज्य ही तत्त्व है—यह व्यक्ति की सत्ता का निराकार है। सरकार ही तत्त्व है—यह स्थायी तत्त्व-जनता का निराकार है। जहाँ निराकार है वहाँ निरपेक्षता है। जहाँ निरपेक्षता है वहाँ असत्य है। असत्य की भूमिका पर सह-अस्तित्व का सिद्धान्त पनप नहीं सकता।

सह-अस्तित्व का आधार—संयम

भगवान् ने कहा—सत्य की खोज करो, सबके साथ मैत्री साधो[1]। सत्य के बिना मैत्री नहीं। मैत्री के बिना सह-अस्तित्व का विकास नहीं।

सत्य का अर्थ है—संयम। संयम से वैर-विरोध मिटता है, मैत्री विकास पाती है। सह-अस्तित्व चमक उठता है। असंयम से वैर बढ़ता है[2]। मैत्री का स्रोत क्षीण हो जाता है। स्व के अस्तित्व और पर के अस्तित्व से वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता बनती है। इसीलिए स्व और पर दोनों एक साथ रह सकते हैं।

अगर सहानवस्थान व परस्पर-परिहार स्थिति जैसा विरोध व्यापक होता तो न स्व और पर ये दो मिलते और न सह-अस्तित्व का प्रश्न ही खड़ा होता। सह-अस्तित्व का सिद्धान्त राजनयिकों ने भी समझा है।

---

१ सया सच्चेण संपन्ने मेत्तिं भूएसु कप्पए।
(सदा सत्येन सम्पन्नः मैत्रीं भूतेषु कल्पयेत्)
(सूत्रकृताङ्ग १।१५।३)

२ पवड्ढई वेरमसंजयस्स। (प्रवर्धते वैरमसंयतस्य)
(सूत्रकृताङ्ग १।१०।१७)

राष्ट्रों के आपसी सम्बन्ध का आधार जो कूटनीति था, वह बदलने लगा है। उसका स्थान सह अस्तित्व ने लिया है। अब समस्याओं का समाधान इसी को आधार मान खोजा जाने लगा है। किन्तु अभी एक मंजिल और पार करनी है।

दूसरों के स्वत्व को आत्मसात् करने की भावना त्यागे बिना सह अस्तित्व का सिद्धान्त सफल नहीं होता। स्याद्वाद की भाषा में—स्वयं की सत्ता जैसे पदार्थ का गुण है वैसे ही दूसरे पदार्थों की असत्ता भी उसका गुण है। स्वापेक्षा से सत्ता और परापेक्षा से असत्ता—ये दोनों गुण पदार्थ की स्वतन्त्र-व्यवस्था के हेतु हैं। स्वापेक्षया सत्ता जैसे पदार्थ का गुण है, वैसे ही परापेक्षया असत्ता उसका गुण नहीं होता तो द्वैत होता ही नहीं। द्वैत का आधार स्व-गुण सत्ता और पर-गुण असत्ता का सहावस्थान है।

सह-अस्तित्व में विरोध तभी आता है जब एक व्यक्ति जाति या राष्ट्र दूसरे व्यक्ति, जाति या राष्ट्र के स्वत्व को हड़पजाना चाहते हैं। यह आक्रामक नीति ही सह-अस्तित्व की बाधा है। अपने से भिन्न वस्तु के स्वत्व का निर्णय करना सरल कार्य नहीं है। स्व के आरोप में एक विचित्र प्रकार का मानसिक झुकाव होता है। वह सत्य पर आवरण डाल देता है। सत्ता शक्ति या अधिकार विस्तार की भावना के पीछे यही तत्त्व सक्रिय होता है।

—०○—

सह अस्तित्व का आधार—संयम

भगवान् ने कहा—सत्य का मर्म खोजकर सबके साथ मैत्री साधो[1]
सत्य के बिना मैत्री नहीं। मैत्री के बिना सह अस्तित्व का विकास नहीं

सत्य का अर्थ है—संयम। संयम से वैर विरोध मिटता है, मैत्री
विकास पाती है। सह अस्तित्व चमक उठता है। असंयम से वैर बढ़
हैं[2]। मैत्री का स्वर क्षीण हो जाता है। स्व के अस्तित्व और पर
नास्तित्व से वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता बनती है। इसीलिए स्व और
दोनों एक साथ रह सकते हैं।

अगर स्वभावभेद व परस्पर परिहार स्थिति जैसा विरोध व्याप्त
होता तो न स्व और पर ये दो मिलते और न सह-अस्तित्व का प्रश्न
खड़ा होता। सह अस्तित्व का सिद्धान्त राजनयिकों ने भी समझा है

---

१ सया सच्चेण संपन्ने मेत्तिं भूएसु कप्पए।
(सदा सत्येन सम्पन्न मैत्रीं भूतेषु कल्पयेत्)
(सूत्रकृताङ्ग १।१५।३)

२ पवड्ढइ वेरमसंजयस्स। (प्रवर्धते वैरमसंयतस्य)
(सूत्रकृताङ्ग १।१।१७)

रूप की ओर अपने रूप में सिकुड़ते जा रहे हैं। यह सामञ्जस्य की रेखा है।

वर्ग विग्रह और अन्तर्राष्ट्रीय विग्रह की समापन रेखा भी यही है। इसीके आधार पर कहा जा सकता है कि आज का विश्व व्यावहारिक समन्वय की दिशा में प्रगति कर रहा है।

—०○—

स्वत्व की मर्यादा

आन्तरिक क्षेत्र में व्यक्ति की अनुभूतियां व अन्तर का आलोक ही उसका स्व है।

बाहरी सम्बन्धों में स्व की मर्यादा जटिल बनती है। दूसरों के स्वत्व या अधिकारों का हरण स्व नहीं—यह अस्पष्ट नहीं है। संघर्ष या अशान्ति का मूल दूसरों के स्व का अपहरण ही है।

युग भावना के साथ साथ स्व की मर्यादा बदलती भी है। उसे समझने वाला मर्यादित हो जाता है। वह संघर्ष की चिनगारी नहीं उछालता। रूढ़ि परक लोग स्व की शाश्वत स्थिति से चिपके बैठे रहते हैं। वे अशान्ति पैदा करते हैं।

बाहरी सम्बन्धों में स्व की मर्यादा शाश्वत या स्थिर हो भी नहीं सकती। इसलिए भावना परिवर्तन के साथ साथ स्वयं को बदलना भी जरूरी हो जाता है। बाहर से सिमट कर अधिकारों में आना शान्ति का सब प्रधान सूत्र है। उसमें खतरा है ही नहीं। इस जन-जागरण के युग में उपनिवेशवाद सामन्तवाद और एकाधिकारवाद मिटते जा रहे हैं। विचारशील व्यक्ति और राष्ट्र दूसरों के स्वत्व से बने अपने विशाल

रूप को छोड़ अपने रूप में सिकुड़ते जा रहे हैं। यह सामंजस्य की रेखा है।

वर्ग विग्रह और अन्तर्राष्ट्रीय विग्रह की समापन रेखा भी यही है। इसीके आधार पर कहा जा सकता है कि आज का विश्व व्यावहारिक समन्वय की दिशा में प्रगति कर रहा है।

—०० —

निष्कर्ष

शान्ति का आधार—व्यवस्था है।

व्यवस्था का आधार—सह अस्तित्व है।

सह अस्तित्व का आधार—समन्वय है।

समन्वय का आधार—सत्य है।

सत्य का आधार—अभय है।

अभय का आधार—अहिंसा है।

अहिंसा का आधार—अपरिग्रह है।

अपरिग्रह का आधार—संयम है।

असंयम से संग्रह, संग्रह से हिंसा, हिंसा से भय, भय से असत्य, असत्य से संघर्ष, संघर्ष से अधिकार हरण, अधिकार-हरण से अव्यवस्था, अव्यवस्था से अशान्ति होती है।

विरोध का अर्थ विभिन्नता है किन्तु संघर्ष नहीं।

१ सार्वभौम दर्शन—अमुक दृष्टिकोण से यह यूं ही है—यह अस्तित्व की नीति है[1]।

१—स्यात् अस्ति एव।

२ एकदेशीय या तटस्थ दृष्टिकोण—यह यूं है—यह सापेक्ष नीति[1] है।

३ आग्रही दृष्टिकोण—यह यूं ही है—यह निरपेक्ष नीति है[2]।

अपने या अपने प्रिय व्यक्तियों के लिए दूसरों के स्वत्व को हड़पने का यत्न करना पक्षपाती नीति है।

आक्रामक को सहयोग देना—पक्षपाती नीति है। दूसरों की प्रभु-सत्ता में हस्तक्षेप करना—पक्षपाती-नीति है। इनमें कुछ भी सामर्थ्य नहीं है (नास्ति—सर्वत्र-वीर्यवाद), यह एकान्तवाद है।

इनमें सब सामर्थ्य है—(अस्ति सवत्र-वीर्यवाद) यह एकान्तवाद है। दूसरों के स्वत्व को अपना स्वत्व न बनाना संयम है। यही सह-अस्तित्व का आधार है।

दूसरों के 'स्वत्व' पर अपना अधिकार करना असंयम या आक्रमण है—पारस्परिक विरोध और ध्वंस का हेतु यही है।

अपरिवर्तित सत्य की दृष्टि से परिवर्तन अवस्तु है, परिवर्तित-सत्य की दृष्टि से अपरिवर्तन अवस्तु है यह अपनी अपनी विषय—मर्यादा है किन्तु अपरिवर्तन और परिवर्तन दोनों निरपेक्ष नहीं हैं।

अपरिवर्तन की दृष्टि से मूल्यांकन करते समय परिवर्तन गौण अवश्य होगा किन्तु उसे सर्वथा भूल ही नहीं जाना चाहिये।

परिवर्तन की दृष्टि से मूल्यांकन करते समय अपरिवर्तन गौण अवश्य होगा किन्तु उसे सर्वथा भूल ही नहीं जाना चाहिए।

१—सन्।

२—सदेव।

नय सापेक्ष-दृष्टियाँ

१ नैगम-नय

अभेद और भेद सापेक्ष हैं।

केवल अभेद ही नहीं है केवल भेद ही नहीं है।

अभेद और भेद सर्वथा स्वतन्त्र ही नहीं हैं।

यह विश्व अखण्डता से किसी भी रूप में नहीं जुड़ा हुआ खण्ड और खण्ड से विहीन अखण्ड नहीं है। यह विश्व यदि अखण्ड ही होता, तो व्यवहार नहीं होता, उपयोगिता नहीं होती, प्रयोजन नहीं होता। अगर विश्व खण्डात्मक ही होता तो एक्य नहीं होता। अस्तित्व की दृष्टि से यह विश्व अखण्ड भी है—प्रयोजन की दृष्टि से यह विश्व खण्ड भी है।

२ संग्रह नय

भेद—सापेक्ष अभेद प्रधान दृष्टिकोण।

यह यह यह यह सब एक है विश्व एक है अभिन्न है।

३ व्यवहार नय

यह यह यह यह, सब भिन्न हैं विश्व अनेक रूप है, भिन्न है।

४ ऋजु सूत्र नय

भूत भविष्य सापेक्ष वर्तमान दृष्टि।

जो बीत चुका है वह अकिंचित्कर है।

जो नहीं आया वह भी अकिंचित्कर है।

कार्यकर वर्तमान है वो वर्तमान है।

५ शब्द नय

भूत भविष्य और वर्तमान के शब्द भी भिन्न भिन्न हैं और उनके अर्थ भी भिन्न भिन्न हैं।

स्त्री, पुरुष और नपुंसक के वाचक शब्द भी भिन्न भिन्न हैं और इनके अर्थ भी भिन्न भिन्न हैं।

६ समभिरूढ़ नय

जितने व्युत्पन्न शब्द हैं उतने ही अर्थ हैं—एक शब्द दो वस्तुओं को अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

७ एवम्भूत नय

एक ही शब्द सदा एक वस्तु की अभिव्यक्ति नहीं करता। क्रिया-कालीन वस्तु का वाचक शब्द क्रिया-काल शून्य वस्तु को अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

दुर्नय निरपेक्ष-दृष्टियाँ

१ व्यक्ति और समुदाय दोनों सर्वथा भिन्न ही हैं—यह वस्तु स्थिति का निरस्कार है। ऐकान्तिक प्राथक्यवादी नीति (नैगम नयाभास) है।

२ समुदाय ही सत्य है—यह व्यक्ति का तिरस्कार है। ऐकान्तिक समुदायवादी नीति (संग्रह नयाभास) है।

३ व्यक्ति ही सत्य है—यह समुदाय का तिरस्कार है। ऐकान्तिक-व्यक्तिवादी नीति (व्यवहार नयाभास) है।

४ वर्तमान ही सत्य है—यह अतीत और भविष्य अपरिवर्तन या एकता का तिरस्कार है। ऐकान्तिक परिवर्तनवादी नीति (पर्यायार्थिक नयाभास) है।

५ लिङ्ग भेद ही सत्य है—यह भी एकता का तिरस्कार है।

६ उत्पत्ति भेद ही सत्य है—यह भी एकता का तिरस्कार है।

७ क्रियाकाल ही सत्य है—यह भी एकता का तिरस्कार है।

— ० —